मगसिर शुक्ल ८, रविवार, दिनांक २२-१२-१९७४, श्लोक-५-६, प्रवचन-१२

अन्तिम दो लाईनें हैं। **इस प्रकार जीवादि तत्त्वों को जैसे हैं, वैसे जानकर,....** अर्थात् क्या कहा? कि यह आत्मा जो शुद्ध चैतन्यघन है, उसके आश्रय से होनेवाला भाव, वह संवर-निर्जरा और मोक्ष का कारण है। बहुत संक्षिप्त। चैतन्य ज्ञानानन्द शुद्ध ध्रुव चैतन्य। यह आया था। **आत्मा के आश्रय से जो ज्ञान-वैराग्यरूप भाव प्रगट होता है, वह संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण और मुझको हितरूप है...** यह इसे निर्णय करना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? आत्मा के आश्रय से.... ११वीं गाथा का लिया है। जिसमें आत्मा का अवलम्बन हो, जिसमें भगवान पूर्णानन्द जिसकी पर्याय में समीप वर्तता हो अथवा जिसके आश्रय से वस्तु स्वरूप भगवान पूर्णानन्द ध्रुव, उसके आश्रय से प्रगट हुई ज्ञान और चारित्रदशा या सम्यक्, वह संवर-निर्जरा और मोक्ष का कारण है।

बाह्यपदार्थों के आश्रय से जो रागादिभाव होते हैं,... चाहे तो तीर्थंकर हो या उनकी वाणी हो या शास्त्र हो, उसका वाँचन आदि बाह्य पदार्थ के आश्रय से होते रागादि भाव, वह बन्ध का कारण है। यह शास्त्र को वाँचन कर, पढ़कर उसका यह आशय निकलना चाहिए। उसका तत्त्व और सार तो यह है। आहाहा! जो चैतन्यस्वरूप पूर्ण वस्तु स्वभाव, उसके आश्रय से प्रगट हुई दशा, वह मोक्ष का कारण है। और बाह्य आत्मा के अतिरिक्त शास्त्र, देव, गुरु वे तो ऊँचे निमित्त लिये हैं। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, वे तो पर हैं, उनके आश्रय से होनेवाला भाव, वह विकार है और देव-गुरु और शास्त्र के आश्रय से होनेवाला भी राग है। आहाहा!

वह राग **आस्रव-बन्धरूप हैं और संसार के कारण हैं....** आहाहा! समझ में आया? **मुझे अहितकर हैं;....** आहाहा! भगवान सर्वज्ञ, गुरु और शास्त्र के आश्रय से होनेवाला राग, वह मुझे अहितरूप है। यह अन्दर की वस्तु में से निर्णय आना चाहिए। आहाहा! पठन कम हो, उसके साथ कोई (सम्बन्ध नहीं)। चैतन्य का आश्रय और पर का आश्रय, दो बात। आहाहा! चैतन्य वस्तु जो अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है, इसके आश्रय से-उसके अवलम्बन से—यह सत्य वस्तु महाप्रभु के आश्रय से—उसके अवलम्बन से जो दशा वीतरागी पर्याय प्रगट हो। उसके आश्रय से राग पर्याय प्रगट नहीं

होती। आहाहा! और बाह्य पदार्थ चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो या सम्मेदशिखर हो या शत्रुंजय हो। आहाहा! 'एक बार वन्दे जो कोई....' आता है न सम्मेदशिखर में? नरक, पशु न होय। ऐसा एक भव नरक-पशु न होय (उसमें क्या है)?

भगवान सर्वज्ञ हो या उनका समवसरण हो या उनकी वाणी हो, परन्तु वह बाह्य पदार्थ है। उसके आश्रय से होनेवाला भाव आस्रव है, बन्ध का कारण है। आहाहा! पूरा जैनदर्शन का दोहन यह है। फिर चाहे जो पढ़े। मगनभाई! आहाहा! भगवान आत्मा जिसकी पर्याय में समीपपने आवे, इसका अर्थ कि पर्याय वहाँ समीपपने जाये। आहाहा! उसे समीप में है न, ऐसा कहा। ....नियमसार में। जिसकी पर्याय में भगवान समीप में वर्तता है। आहाहा!

लाख बात की बात (यही) निश्चय उर लाओ।
छोड़ी जगत द्वंद्व फंद निज आतम ध्याओ॥

आहाहा! यह बात न हो और दूसरी बाहर की करोड़ों, अरबों खर्च करे, यह जम्बूद्वीप और ढ़ाई द्वीप रंगे। रंगे क्या कहलाता है? उत्कीर्ण करे। यह लाख बात है, उसके आश्रय से तो राग है, हो भले। परन्तु वह आस्रव है, बन्धरूप है, क्योंकि अबन्धस्वरूपी भगवान आत्मा आत्मा तो '**अबद्धपुट्ठं**'। वह तो राग से बँधा हुआ नहीं, उसमें द्रव्य और राग कहीं आते थे? ऐसा जो वस्तु का स्वरूप, उसके आश्रय से धर्म होता है और पर पदार्थ के आश्रय से राग होता है। दूसरी भाषा से (कहें तो)। मगनभाई! परपदार्थ के आश्रय से अधर्म होता है। नवनीतभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : राग होता है या अधर्म होता है दोनों एक ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही कहलाते हैं। वह स्पष्ट बात कही। आहाहा! पूरा तत्त्व का स्वरूप ही यह है। उसे किसी दूसरे प्रकार से कहे कि परद्रव्य के आश्रय से होता भाव आत्मा को धर्म का कारण हो, (यह विपरीतता है)। जो संसार का कारण है, वह धर्म का कारण कहाँ से होगा? समझ में आया? ऐसा मार्ग है।

देखा! संक्षिप्त में डाला है। **आत्मा के आश्रय से जो ज्ञान-वैराग्यरूप....** वैराग्य अर्थात् चारित्र। **भाव प्रगट होता है, वह संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण और मुझको**

हितरूप है तथा बाह्यपदार्थों के आश्रय से.... बाह्य में कौन रहा? आत्मा के अतिरिक्त सब बाह्य। आहाहा! स्त्री-कुटुम्ब के आश्रय से, इस धन्धे के आश्रय से भाव हो, वह कैसा होगा? संसार का कारण है। अहितरूप है। आहाहा! जगत की अनुकूलता करने के लिये मिथ्या प्रयास करता है। है अत्यन्त प्रतिकूल भटकने का रास्ता। आहाहा! पोपटभाई! बाह्य पदार्थ को प्रसन्न रखना या बाह्य पदार्थ मुझे प्रसन्नता दे, अनुकूलता (मिले), ऐसी जो सब.... क्या कहलाये व्याकरण?

मुमुक्षु : लालापेठा।

पूज्य गुरुदेवश्री : लालापेठा। दूसरों के साथ बात करते हुए भी मानो दूसरे मुझसे प्रसन्न हों....

मुमुक्षु : लालोपतो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लालोपतो। लालुपत यह अलग भाषा।

मुमुक्षु : लाला चोपड़ी कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह लाला चोपड़ी तुम्हारे कहते हैं। अपने यहाँ लालापोत कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तू दुनिया को प्रसन्न रखने और दुनिया से प्रसन्न होने जितना भाग, उतना सब बन्ध का कारण है, दु:ख का कारण है। और जितना भगवान को प्रसन्न रखने जाये अन्दर में.... आहाहा! उतना आत्मा को सुख का कारण है। श्रीमद् के एक पत्र में शुरुआत में आता है। जगत को प्रसन्न रखने को.... शुरुआत में, नहीं?

मुमुक्षु : लवथव करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : लवथव, हों! अधिक। लवथव अर्थात् लववुं और थववुं। अर्थात् दूसरे को महत्ता बतलाना, करना और दूसरे से महत्ता लेना, वह लवथव है। लवथव कहते हैं लोग। समझ में आया? लवथव की व्याख्या ऐसी है कि दूसरे के साथ बात करते हुए उसे महत्ता देना और उससे अपने को महत्ता लेना। आहाहा! पोपटभाई! ऐसा है। आहाहा! श्रीमद् में एक पत्र आता है। दूसरे को प्रसन्न रखने के लिये अनन्त बार प्रयत्न किया। जगत मुझे ठीक रखे और उसे ठीक मैं रखूँ। आहाहा! यह झूठाभाई के प्रति है। झूठाभाई नहीं, अहमदाबाद? २०-२१ (वाँ पत्रांक)।

जगत को भला दिखाने के लिये अनन्त बार प्रयत्न किया, इससे भला हुआ नहीं। क्योंकि परिभ्रमण और परिभ्रमण के हेतु अभी प्रत्यक्ष रहे हैं। आहाहा! **एक भव यदि आत्मा का भला हो, ऐसा व्यतीत किया जायेगा, तो अनन्त भव का बदला मिल जायेगा, ऐसा मैं लघुत्वभाव से समझा हूँ....** एक भव आत्मा का भला हो, वैसा व्यतीत किया जाये। आहाहा! यह तो शुरुआत की बात है। आत्मा का भला हो। वह कब? कि स्वयं आनन्द का नाथ पूर्णानन्दस्वरूप, उसका आश्रय ले तो कल्याण अर्थात् भला हो। राजेन्द्र! आहाहा! समझ में आया?

बाह्यपदार्थों के आश्रय से.... आहाहा! परन्तु उसमें तो कहा है न—धवल में तो कि 'जिनबिम्ब देखकर निद्धत और निकाचित कर्म नाश होते हैं।' लो! यह तो मानो कि ओहोहो! वीतरागमूर्ति शान्त बैठे हैं। ऐसी वीतरागमूर्ति मैं हूँ, जिनबिम्ब मैं हूँ। आहाहा! जिसकी नजरें जिनबिम्ब पर पड़े, वह जिनबिम्ब यह। परन्तु धवल का वह कोटेशन दे। देखो! भगवान के दर्शन से जिनबिम्ब से भी निद्धत और निकाचित कर्म का नाश होता है और मोक्ष होता है। आहाहा! भाई! यह जिनबिम्ब वह नहीं। आहाहा! अकषायस्वभाव का स्वरूप वह जिनबिम्ब आत्मा है। उसके आश्रय से हितरूप हो। आहाहा! बाकी तीन लोक का नाथ सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखने से तुझे राग होगा। भाई! वह संसार का कारण है। आहाहा! यह वीतराग की वाणी देखो! मैं भी तेरी अपेक्षा से बाह्य हूँ। अन्दर में नहीं। आहाहा! ऐसे बाह्य पदार्थों के आश्रय से तुझे राग होगा। आहाहा! हमारे गुरु के आश्रय से, वीतरागी सन्तों के आश्रय से राग होगा। तीर्थंकर कहते हैं, हम छद्मस्थ हों और हमें आहार देने का भाव आवे, आहाहा! तो राग होगा, भाई!

यह (संवत्) १९७७ में चर्चा हुई थी, गोंडल। तुम्हारे रिश्तेदार पोपट जादवजी। उनके पुत्र वेरे उनकी बहन दी है न? रामजीभाई की। पोपट जादवजी। ....सामने। उसके साथ बात हुई थी कि उसमें ऐसा आया है न शास्त्र में कि रेवती के यहाँ आहार लेने गये.... भगवती (सूत्र) में पाठ है। भगवान को रोग हुआ। आहाहा! ....भगवान को राग हुआ। पीड़ा.... पीड़ा.... पीड़ा.... अरे! भगवान को रोग नहीं होता, भाई! भगवान को तो रोग नहीं होता परन्तु उनके शरीर को नहीं होता। समझ में आया? भगवान जिसमें तीर्थंकर का आत्मा (रहे), वे तो जन्म से उन्हें परम औदारिकशरीर

होता है। उनकी डिब्बी ही अलग होती है। केसर बोरियों में नहीं रखी जाती। उसे चाहिए काँच के और पीतल के डिब्बे। उसी प्रकार तीन लोक का नाथ तीर्थंकर जो होनेवाला है अभी तो, हों! वह जन्मे तब से उसका शरीर परम औदारिक होता है। आहाहा! यह कहते हैं कि हमको भी छद्मस्थ के समय आहार देने का तुझे भाव हो, वह शुभभाव है, हों! भाई! आहाहा! नवरंगभाई! ऐसा कौन कहे? वीतरागस्वभावी आत्मा ऐसा कहे। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो हित और अहित की दो बातें हैं। आहाहा! गजब बात!

बाह्यपदार्थों के आश्रय से.... देवजीभाई! यह मन्दिर बनाया तुमने तो क्या है? कहते हैं, उसके आश्रय से भाव शुभ हो। ऐसा कहते हैं। गजब भाई! वह अहितरूप है। आता है, वीतराग पूर्ण हो उसे ऐसा भाव आता है, परन्तु है तो अहितरूप। आहाहा! अपने में से हटकर पर का आश्रय ले, वहाँ तो आँगन में से ही निकल गया वह तो। आहाहा! ऐसी बात मूल समझे बिना चाहे जितने भाषण, व्याख्यान दे, उसमें कहीं मूल चीज़ वीतराग की आयी नहीं। समझ में आया? गले उतरना कठिन पड़े। मार्ग तो ऐसा है, भाई! **बाह्यपदार्थों के आश्रय से जो रागादि....** पुण्य भाव आदि हो, वह **आस्रव-बन्धरूप हैं और संसार के कारण हैं....** आहाहा! भाई! भगवान का मार्ग अनेकान्त है। अनेकान्त की व्याख्या क्या? कि भगवान की पूजा से, दान से भी धर्म होता है और आत्मा के आश्रय से धर्म होता है। (ऐसा) अनेकान्त मार्ग है? अरे! आत्मा के आश्रय से होता है और पर के आश्रय से धर्म नहीं होता, यह अनेकान्त है। समझ में आया? यह तो भाई! मूल मार्ग है, बापू! आहाहा! चैतन्य हीरा महाप्रभु, उसका आश्रय छोड़कर बाहर में जाता है। आहाहा! उस वृत्ति को व्यभिचारी कहा है। निर्जरा अधिकार। २०३ गाथा। नहीं? आहाहा! भारी बात, भाई! व्यभिचारी। आहाहा! वह संयोगी भाव है, स्वाभाविक भाव नहीं।

इस प्रकार जीवादि तत्त्वों को जैसे हैं, वैसे जानकर,.... इस प्रकार। समझ में आया? **इस प्रकार जीवादि तत्त्वों को....** हित और अहित ऐसे तत्त्व। ऐसा कहा न? स्व के आश्रय से हितरूप भाव, पर के आश्रय से अहितरूप भाव। इस प्रकार तत्त्वों को

जानकर। आहाहा! यह पानी का छनना तो कहीं रह गया, नहीं? नवनीतभाई! (संवत्) २००५ का वर्ष हो गया न! यह तो २६ वर्ष हो गये। ...गये। आहाहा!

इस प्रकार जीवादि.... स्व के आश्रय से होनेवाली निर्जरा, पर के आश्रय से होनेवाले आस्रव और बन्ध, वे **जैसे हैं, वैसे जानकर,....** अन्दर ज्ञान करके। **उनकी सच्ची प्रतीति करके,....** अर्थात् जानकर प्रतीति ली है। १७-१८ में ऐसा है न? (समयसार) १७-१८ गाथा में। पहले ज्ञान करे। यह यह है, ऐसा जाने बिना प्रतीति किसकी? आहाहा! **जीवादि तत्त्वों को....** आ गया न सब? जीवतत्त्व का आश्रय करके होनेवाला संवर, निर्जरा, मोक्ष। बाह्य पदार्थ-अजीव या जीव दूसरे चाहे जो। उसके आश्रय से होनेवाला आस्रव और बन्ध, वह संसार का कारण है। आहाहा!

सच्ची प्रतीति करके, जो अपने ज्ञानानन्दस्वरूप.... यह अन्तरात्मा की व्याख्या चलती है, धर्मी ऐसा होता है। आहाहा! **अपने ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा में...** ऐसा कहकर यह कहा कि आत्मा अर्थात् क्या? कि ज्ञानानन्दस्वरूप। आहाहा! ज्ञान अर्थात् समझण और आनन्द अतीन्द्रिय। यह ज्ञानानन्दस्वरूप **आत्मा में ही अन्तर्मुख होकर वर्तता है, वह 'अन्तरात्मा' है।** समझ में आया? यह तो सादी भाषा है। यह कहीं बहुत ऐसी नहीं है। आहाहा!

अन्तरात्मा के तीन भेद हैं— अब इसके वापस तीन भेद किये। धर्मात्मा के। **उत्तम अन्तरात्मा, मध्यम अन्तरात्मा, और जघन्य अन्तरात्मा।** स्व का आश्रय लेकर प्रगट हुई धर्मदशा अभी पूर्ण हुआ नहीं। ऐसे अन्तरात्मा के तीन प्रकार। उत्तम, मध्यम और जघन्य। **अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग परिग्रहों से रहित,...** अन्तिम बारहवें गुणस्थान की बात है। उत्तम है न? **अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग परिग्रहों से रहित,...** बाह्य का संयोग वस्त्रादि नहीं, अन्दर का संयोग रागादि नहीं। **शुद्धोपयोगी आत्मध्यानी....** शुद्ध उपयोगी वीतरागी परिणतिवाला **आत्मध्यानी दिगम्बर मुनि, 'उत्तम अन्तरात्मा' हैं। ये महात्मा,....** उत्कृष्ट लेना है न? **सोलह कषायों के अभाव द्वारा क्षीणमोह पदवी (बारहवाँ गुणस्थान) प्राप्त कर स्थित हैं।** आहाहा! बारहवें गुणस्थान में उत्कृष्ट अन्तरात्मा लिये। अभी अन्तरात्मा है न वह? बारहवाँ—वीतरागदशा। उत्तम अन्तरात्मा।

चतुर्थ गुणस्थानवर्ती, व्रतरहित सम्यग्दृष्टि आत्मा.... सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाला। व्रतरहित **सम्यग्दृष्टि, आत्मा 'जघन्य अन्तरात्मा' कहलाते है।** निचली श्रेणी का अन्तरात्मा कहलाता है। क्योंकि आत्मा का आश्रय लिया है, परन्तु अभी कषाय बाकी है। और यहाँ आश्रय लिया और पूर्ण कषायरहित हो गया—उत्कृष्ट उत्तम आत्मा.... आहाहा! **इन दोनों (उत्तम और जघन्य) के मध्य स्थित सर्व....** पाँचवें गुणस्थानवाले मध्यम अन्तरात्मा से वह ग्यारहवें गुणस्थानवाले (तक)। समझ में आया? चौथे गुणस्थान से जघन्य अन्तरात्मा कहलाते हैं। **इन दोनों के मध्य स्थित सर्व 'मध्यम अन्तरात्मा' हैं,....** आहाहा! **अर्थात् पञ्चम से ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती....** गुणस्थानवर्ती—गुणस्थान में वर्तनेवाले। आहाहा! जिसे आत्मा का आनन्द चौथे गुणस्थानवाले सर्वार्थसिद्धि के देव को अविरत सम्यग्दृष्टि हो गया और जिसे पाँचवाँ गुणस्थान अन्तर में प्रगट हुआ है। आहाहा! उसे आनन्द की धारा विशेष हो गयी है। शान्ति चौथे से सर्वार्थसिद्धि के एकावतारी देव, वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले, उनकी अपेक्षा भी जिसे अन्तर में आनन्द की मौज....आहाहा! अकषायभाव, दूसरे नम्बर का कषायभाव टलकर जिसे ऐसी शान्ति.... शान्ति.... शान्ति.... उपशमरस जिसे बढ़ गया है, चौथे की अपेक्षा, उसे मध्यम अन्तरात्मा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

परमात्मा... किसे कहते हैं अब? मुनि भी छठवें गुणस्थान में मध्यम अन्तरात्मा आये। सच्चे मुनि। आहाहा! जिन्होंने आत्मा का अवलम्बन लेकर दो कषाय का नाश किया है, वे मध्यम पंचम गुणस्थानवाले। जिन्होंने भगवान आत्मा का आश्रय लेकर, परम शुद्धोपयोगी होकर.... आहाहा! यह आता है प्रवचनसार में। पहली पाँच गाथाओं में। परम शुद्धोपयोगी। आहाहा! यह आचार्य, उपाध्याय और साधु। आहाहा! उसे मध्यम अन्तरात्मा कहते हैं। अरे! सातवें गुणस्थान से बारहवें अप्रमत्तदशा में रहे हुए। जिसका द्रव्यस्वभाव देखने से जो पर्याय का जिसमें निषेध होता है। पहले से छठे तक, सातवें तक.... पहले से छठे तक प्रमत्त, सातवें से चौदहवें तक अप्रमत्त।

'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो' जिसे अप्रमत्त और प्रमत्त दशा नहीं है, ऐसा

भगवान ज्ञायकस्वभाव, जिसमें केवलज्ञान की पर्याय नहीं। आहाहा! वस्तु जो दृष्टि-सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन जो धर्म की शुरुआत जघन्य अन्तरात्मा, उसका विषय जो है, वह तो वस्तु है। उस वस्तु में अप्रमत्त या प्रमत्त दशा नहीं। आहाहा! समझ में आया? सच्ची प्रमत्त-अप्रमत्तदशा, हों! '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' ज्ञायकभाव, हों! भाव लिया है न? यह भाववान का भाव लिया है। ज्ञायकभाव, त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव। जो सम्यग्दर्शन का आश्रय है, विषय है, ध्येय है। वह चीज़ जो है, उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा में प्रमत्त-अप्रमत्तदशायें नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? ओहो! बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! लोग ऐसा कहते हैं कि तुम किसी को मानते नहीं। अरे... बापू! पंच परमेष्ठी को नहीं मानते? और तुमको शंका किसलिए पड़ती है? पंच परमेष्ठी को माने उसमें हो तो तुम उसमें आ जाते हो और न हो तो बाहर रह जाते हैं।

मुमुक्षु : उसमें हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे तो है कहलाये न? आहाहा! बापू! तिरस्कार के लिये नहीं। भाई! यह वस्तु का स्वरूप है। इस वस्तु के स्वरूप का यदि तुम मानते हो, ऐसा स्वरूप न हो तो वह मान्यता करना, वह स्वयं के लिये है, वह कहीं पर के लिये नहीं। आहाहा! जो सत्य के पक्ष में आकर बात हो, वह बात इसकी है। समझ में आया? सत्य के पक्ष में आया नहीं और मान बैठा है कि हम साधु हैं, श्रावक हैं। मानो बापू! लाभ नहीं होगा, भाई! यह भव के बोझ नहीं टलेंगे। समझ में आया? भव का बोझा। आहाहा! निगोद में एक अन्तर्मुहूर्त में एक श्वास में अठारह भव। गजब बात है न! आहाहा! निगोद के जीव एक श्वास में अठारह भव करे। आहाहा! ऐसा कहकर यह कहते हैं.....

यह महिलायें होती हैं न? बहुत प्रकार की साड़ियाँ रखे। क्या कहलाता है वह? क्या कहलाता है तुम्हारा वह? ट्रंक-ट्रंक। भूल जाते हैं। अलग-अलग प्रकार के वस्त्र पहने। देखा है? दिशा को जाये तब अलग, कहीं चार बजे रोने जाये तो अलग। ऐसा है न? गाँव में जाना हो तो अलग। कितनी प्रकार के रखती हैं बक्से में। नम्बर....

नम्बर.... नम्बर.... नम्बर.... नम्बर.... इसी प्रकार यह राजा बड़े कितने प्रकार के जूते रखते हैं। माधवसिंहजी को ३५ जोड़े निकले थे, मर गये तब। दूसरा कहना है हमारे। कि जिसमें जिसकी प्रीति है, वह बदलाया ही करता है। यह करूँ.... यह करूँ.... यह करूँ.... यह करूँ....

इसी प्रकार निगोद के जीव को भव का प्रेम है। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में बदला करता है। समझ में आया? आदमी को ऐसे थोड़े बदले। आदमी ऐसे होते हैं। सवेरे के कपड़े अलग, शाम के अलग, सोने के अलग। राजा हो उसे सोने के अलग होते हैं, बाहर के अलग होते हैं। यह सब प्रकार होते हैं। उन्हें—महिलाओं को ऐसा होता है। बेल बूंटेदार से यहाँ जाया जाये, अमुक हो तो ऐसे जाया जाये, उसमें तो सादा हो। भिन्न-भिन्न.... आहाहा! इसका अर्थ यह है कि उसे उसके ऊपर प्रेम है। और प्रेम है, इसलिए उसे बदला-बदलाकर अच्छा कैसे दिखाई दूँ? आहाहा! इसी प्रकार भवभ्रमण में एक श्वास में अठारह भव (करता है)। आहाहा! बापू! बात नहीं। उसे भव का प्रेम है अव्यक्तरूप से। उसे ऐसा नहीं कि मैं भव बदलाता हूँ। परन्तु भव के भाव का मिथ्यात्व का प्रेम है न? उस मिथ्यात्व में अनन्त भव करने की ताकत है। एक श्वासोश्वास, हों! उसमें अठारह भव। क्या यह बात है! आहाहा! सर्वज्ञ भगवान परमात्मा ने देखा और कहा है यह।

कहते हैं कि इन सब भवों की ताकत मिथ्यात्व में है। जिसे मिथ्यात्व का रस है, वह भव किया ही करेगा। और जिसने वह रस तोड़ा है.... आहाहा! जिसमें भव और भव का भाव नहीं, ऐसा जो भगवान, भव और भव का भाव नहीं ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका आश्रय लेगा, उसे भव नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? बाकी सब.... ऐसा किया, उसको समझाया, हमने ऐसा कराया, हमने लाखों खर्च कराये, ऐसे २६-२६ लाख के बँगले (मन्दिर) बनाये। इसलिए उसमें से कुछ धर्म होगा, इस बात में जरा भी दम नहीं है। ऐई! समझ में आया? हमने पाठशालायें बहुत निकाली। क्या कहलाता है? शिक्षण शिविर किये। ऐई! यह सब विकल्प है। वह विकल्प तो आस्रव है, अहित का कारण है। यह तो बात, बापू! आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी बात है, भाई!

कहते हैं कि यह अन्तरात्मा पाँचवें से वह ग्यारहवें तक। आहाहा! मुनि को तो शुद्धोपयोगी ही कहा है। ऊपर शुद्धोपयोगी जो कहा, वह सोलह कषाय के अभाववाले को। उत्कृष्ट आत्मा लेना है न अन्तरात्मा। इसलिए। बाकी मुनि को प्रवचनसार की पाँच गाथा में परमशुद्धोपयोगी (कहा है)। आहाहा! यह पंच महाव्रत का पालनेवाला और नग्न, ऐसा शब्द नहीं लिया। वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा! नग्नपना तो तिर्यंच को भी है। ऐसा आता है न? अष्टपाहुड़ में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आता है। तिर्यंचपना है उसे। भावपाहुड़ में बहुत आया है। भाई गये? प्रवीणभाई गये। नहीं? प्रवीणभाई बहुत प्रसन्न थे। भावपाहुड़ ले गये हैं वहाँ? आहाहा! उसमें जिनभावना बहुत आयी थी। आयी थी न भाई? जिनभावना बिना अर्थात् कि वस्तु वीतरागस्वरूप है, उसकी भावना बिना। आहाहा! भाई! भाव जिनस्वरूप की भावना बिना अनन्त बार द्रव्यलिंग लिये और पंच महाव्रत पालन किये। परन्तु वह तो सब बाह्य पदार्थ के आश्रय का भाव है। आहाहा! अरे! यह अन्तर कब समझे? यह दीक्षा लेते हैं ऊपराऊपर। बापू! दीक्षा किसे कहना भाई! तुझे खबर नहीं। अभी तो मिथ्यात्व में कितने उल्टे पड़े हैं, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि पंचम गुणस्थान से छठवें में आये। अन्तरात्मा है, मध्यम अन्तरात्मा है। आहाहा! अन्तर स्वरूप है, उसे यहाँ पकड़ा है। पूर्णानन्द के नाथ को जिसने दृष्टि में लिया है। जिसने वर्तमान ज्ञान की पर्याय में पूर्णानन्दस्वरूप को ज्ञेय बनाया है। आहाहा! और जो पूर्णानन्द के स्वरूप में शुद्धोपयोगी रमते हैं, उसे मध्यम अन्तरात्मा कहा जाता है। आहाहा! ऐसा उसका स्वरूप ही है, अब उसमें करना क्या? और यह तो ऐसा कहे, नहीं। हम तो मानो। बापू! तुमको मानेंगे? बापू! तुमको मानेंगे तो तुम कौन हो और कहाँ हो, यह तुम्हें खबर नहीं? आहाहा! यहाँ तो वहाँ तक को अन्तरात्मा कहा है।

अब परमात्मा। **जिन्होंने अनन्त ज्ञान-दर्शनादिरूप चैतन्यशक्तियों का....** गजब भाषा की है। अनन्त ज्ञान दर्शनरूपी जो शक्तियाँ हैं, गुण हैं, स्वभाव भगवान आत्मा का वह स्वभाव है। आहाहा! उसका **पूर्णरूपेण विकास करके....** पूर्णरूप से विकास

करके। ज्ञानावरणीय का नाश किया, ऐसा न लेकर, इन शक्तियों का पूर्ण विकास करके। अस्ति से लिया है न। कहीं-कहीं नास्ति आवे भले, परन्तु वह कोई ज्ञानावरणीय का नाश होने से विकास होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आवे व्यवहार के ग्रन्थ में। व्यवहार के कथन बहुत होते हैं। इसलिए कहा न कि व्यवहारनय एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य की बात करेगा। एक भाव में दूसरे भाव को मिलायेगा। कारण कोई और कार्य कोई, ऐसा कहेगा। ऐसी मान्यता करेगा तो मिथ्यात्व है। आहाहा! तब व्यवहारनय भगवान ने नहीं कहा? परन्तु व्यवहारनय है इतना। परन्तु व्यवहारनय आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा वहाँ कहाँ आया? व्यवहारनय है, इतना इसे जानना चाहिए। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो व्यवहारनय का विषय संसार नहीं? बन्ध नहीं? आस्रव नहीं? वस्तु है। इसलिए क्या है? अरे! उसकी निर्मल पर्याय भी व्यवहारनय का विषय है। वस्तु है, वह निश्चयनय का विषय है। आहाहा! आनन्द और शान्ति प्रगट हुई चौथे, पाँचवें, छठवें में, वह भी व्यवहार है। वह आत्मव्यवहार है। और रागादि दया, दान को अपने मानकर रहना, वह मनुष्य का सांसारिक व्यवहार है। मनुष्य व्यवहार कहा है। प्रवचनसार, गाथा ९४। आहाहा! भगवान भूलानी खडकी। हमारे है न आत्माराम की? इनके बाप-दादा.... भगवान भूला। इसी प्रकार यह भगवान भूला है। उसके रास्ते चढ़ गया। राग की और पर्याय के आश्रय की और उसकी.... उसकी.... उसकी.... आहाहा!

मुमुक्षु : .... आत्माराम हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्माराम भगवान भूला में रहता है न! यह तो परिवाररूप से है। आहाहा!

आतमराम.... वह राग की क्रिया और यह क्रिया.... यह क्रिया.... यह क्रिया.... वह मैं करता हूँ और वह मुझे लाभदायक है, यह भगवान भूलानी खडकिये। भूल की खडकिये चढ़ गया है। समझ में आया?

परमात्मा तो उसे कहते हैं कि पूर्णरूप से विकास कर सर्वज्ञ (पद) प्राप्त किया

है। आहाहा! है न? सर्वज्ञ पद। **वे 'परमात्मा' हैं। परमात्मा के दो प्रकार हैं**—उस अन्तरात्मा के तीन प्रकार थे। **सकल परमात्मा...** सकल-कल अर्थात् शरीर, शरीरसहित परमात्मा अरिहन्त परमात्मा। **निकल परमात्मा।** शरीररहित परमात्मा सिद्ध परमात्मा। **अरहन्तपरमात्मा, सकलपरमात्मा हैं और सिद्धपरमात्मा, निकलपरमात्मा हैं, वे केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय से सहित हैं।** दोनों भी केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द जिसकी दशा में पूर्ण पवित्रता प्रगट हो गयी है, उसे परमात्मा कहा जाता है। कोई जगत का कर्ता है, जगत को तारने के लिये अवतार ले और वह परमात्मा है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अरहन्त परमात्मा के चार अघातियाकर्म शेष हैं, उनका प्रतिक्षण क्षय होता जाता है। क्षय होता जाता है, हों! करे तो नहीं। **उनके बाहर में समवसरणादि दिव्यवैभव होता है;....** तीर्थंकर की.... बात है। **समवसरणादि दिव्यवैभव होता है; उनके बिना इच्छा के ही भव्यजीवों के कल्याणरूप दिव्यध्वनि छूटती है;....** इच्छा बिना ॐ ध्वनि भव्य जीवों के कल्याणरूप (खिरती है)। भाषा तो ऐसी कही जाये न! कोई कहे कि वाणी का आश्रय ले तो विकल्प होता है। यह बताकर यह बताते हैं अन्दर यह कि हमारा भी लक्ष्य छोड़कर तेरा लक्ष्य कर तो तेरा कल्याण होगा। ऐसी वाणी सुनने की। समझ में आया? यह बात बैठना वास्तव में.....

मुमुक्षु : यह तो जो बैठाना चाहे उसे बैठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर बैठे। यह तो वस्तु की स्थिति ही ऐसी है वहाँ। आहाहा! वस्तु स्वयं ही पुकार करती है। उसमें पर के कहनेवाले चाहे जैसे हों, उसके साथ क्या सम्बन्ध है?

उनके बिना इच्छा के ही भव्यजीवों के कल्याणरूप दिव्यध्वनि.... देखा! **वे परम हितोपदेशक हैं;....** हित का उपदेश करनेवाले हैं। लो, वे केवली वापस हित का उपदेश करनेवाले हैं। निमित्तरूप से वाणी है न, इसलिए हित का उपदेश करनेवाले कहलाते हैं। आहाहा! वह भी परम हितोपदेशक। आत्मा का कल्याण कैसे हो? मोक्ष कैसे हो? ऐसे परम हित के उपदेशक हैं। आहाहा! संसारदशा का व्यय, मोक्षदशा का

उत्पाद (हो), ऐसा भगवान का उपदेश है।

परमौदारिकशरीर के संयोगसहित होने से,... परम औदारिकशरीर होता है, केवली को। तीर्थंकर को तो जन्म से होता है। परन्तु यह तो केवली की बात है न? आहाहा! **परमौदारिकशरीर के संयोगसहित होने से, वे सकल (कल अर्थात् शरीरसहित) परमात्मा कहलाते हैं।** आहाहा! भले शरीर हो, परन्तु है परमात्मा। भावमोक्ष है। उसे अरिहन्त परमात्मा कहा जाता है। ऐसे परम औदारिकशरीर (होता है), उन्हें रोग कहना.... अभी कुछ पढ़ा था कल। बहुत पीड़ा। ऐसा कि भगवान को बहुत पीड़ा हुई। सिंह अणगार को बुलाया, जाओ। लेने जाओ। ऐसा आता है भगवती में।

मुमुक्षु : परन्तु वीतराग को पीड़ा हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर में पीड़ा हो न। शरीर है न उन्हें? ग्यारह परीषह है न? शास्त्र में नहीं लिया? ग्यारह परीषह केवलज्ञानी को है। वह तो उपचार से कथन है। कर्म पड़े हैं चार अघाति इसलिए। आहाहा! अभी अरिहन्त की भी खबर नहीं होती और जिस शास्त्र में अरिहन्त के केवलज्ञान के समय रोग हो, पीड़ा हो, वे दवा लावे और दे, वह शास्त्र नहीं है, भाई! आहाहा! कठिन बहुत। समझ में आया? जयन्तीभाई! सुना है या नहीं सब? नहीं सुना तुमने? खूनी दस्त फिर भगवान को खूनी दस्त। उनके भक्तों को-इन्द्रों को (भी) न हो। उनके देव को हो! आहाहा! यह तो कोई बात! उन्हें खबर नहीं। नहीं तत्त्व की, आत्मा की खबर, नहीं उसे पुण्य-पाप की। नौ तत्त्व की भूल है। आहाहा! समझ में आया? यह आया था, दो दिन पहले। .... भगवान को ऐसा हुआ... ऐसा हुआ। समाचारपत्र है न स्थानकवासी का? जैन प्रकाश में-उसमें है। भगवान को पीड़ा हुई, भगवान को ऐसा हुआ। अरे! भाई! यह क्या किया तूने? यह शास्त्र की रचना, वह सन्तों की रचना नहीं है। भाई! वह आत्मज्ञानी की रचना नहीं है। आहाहा! इससे किसी का तिरस्कार करना है, ऐसा नहीं है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। उसे दूसरे प्रकार से मानने से मान्यता विपरीत हो जाती है। आहाहा! कहते हैं, उन्हें तो परम औदारिकशरीर (होता है)।

जो ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म और शरीरादि नोकर्म से रहित हैं,

शुद्धज्ञानमय हैं,.... यह सिद्ध की बात है। यह सिद्ध की। **औदारिकशरीर (कल) रहित हैं, वे निर्दोष और परमपूज्य सिद्धपरमेष्ठी 'निकलपरमात्मा' कहलाते हैं, वे अनन्त काल तक अनन्त सुख को भोगते हैं।** ऐसे सिद्ध को सिद्ध कहा जाता है। जिन्होंने अनन्त आनन्द प्रगट करके अनन्त-आनन्द सादि-अनन्त अनुभव करेंगे, अनुभव करते हैं। आहाहा! **आत्मा में परमानन्द की शक्ति भरी पड़ी है;....** वह आत्मधर्म में से डाला है। है न नीचे? आत्मधर्म में आया है न, उसमें से। क्या कहलाता है वह बहुत हस्त....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, यह नहीं। यह तो ....सिद्ध हैं। मात्र सिद्ध।

मुमुक्षु : सिद्ध हस्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध हस्त। हाँ, हाँ, यह सिद्ध हस्त। भाई ने एक पुस्तक बनायी है न नहीं यह? डॉक्टर.... उसमें लिखा है, हरिभाई ने दिया है। सिद्ध हस्त है यह। आत्मधर्म लिखने में लिखा है। एक शब्द आया था आज। ....वहाँ आया है न? वह नहीं? वहाँ का कोई है। अहिंसा परमो धर्म। है यहाँ की रुचिवाला। यहाँ की बात अधिक प्रकाशित करता है। हरिभाई का लेखन पत्र बड़ा है। उसमें क्या हुआ? सत्य बात रुचती हो तो उसे अच्छा लगे तो उसमें क्या है?

आत्मा में परमानन्द की शक्ति भरी पड़ी है;.... आहाहा! तू ऐसे झपट्टे मारता है बाहर में आनन्द के लिये अर्थात् कि मजा के लिये अर्थात् कि सुखी होने के लिये। मूर्खता है। क्योंकि परमानन्द की शक्ति से भरपूर परमात्मा स्वयं आत्मा इतना है। आहाहा! **आत्मा में परमानन्द की शक्ति...** अर्थात् गुण, हों! **भरी पड़ी है;....** जैसे शीशी दूध भरा हो, ऐसा न? यह दृष्टान्त आता है। ऐसा नहीं। ऐसा कहाँ है? जैसे दूध में मिठास पड़ी है, ऐसे। दूध शीशी में, बर्तन में पड़ा है, ऐसे नहीं। वैसे गुण कोई चीज़ है, उसमें पड़े हैं, ऐसा नहीं। वह परमानन्दरूपी शक्ति भगवान द्रव्य में पड़ी है। आहाहा! वह शक्ति भरी पड़ी है। आहाहा!

बाह्य इन्द्रिय विषयों में वास्तविक सुख नहीं है। इन्द्रिय के विषय शब्द-रूप-

रस-गन्ध-स्पर्श उसमें जरा भी मजा नहीं। वह तो जहर के प्याले दुःख का पिया है इसने। समझ में आया? **ऐसी अन्तर्प्रतीति करके, धर्मी जीव, अन्तर्मुख होकर....** अन्तर्मुख होकर **आत्मा के अतीन्द्रिय सुख का स्वाद लेता है।** आहाहा! **आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता है।** आहाहा! उसे अन्तरात्मा और धर्मी कहते हैं। समझ में आया?

अब यह दृष्टान्त अपने बहुत बार देते हैं न? यह इन्होंने डाला है। **जैसे - छोटी पीपर के दाने-दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट की सामर्थ्य भरी है, वैसे ही प्रत्येक आत्मा का स्वभाव परिपूर्ण ज्ञान-आनन्द से भरा हुआ है किन्तु उसका विश्वास करके....** आहाहा! वह पूर्ण ज्ञान और आनन्द से अस्तित्व है, उसका विश्वास करके प्रतीति में लेकर, ज्ञान में ज्ञेय बनाकर, फिर प्रतीति में लेकर अर्थात् विश्वास। ऐसे। **अन्तर्मुख होकर उसमें एकाग्र हो...** आहाहा! **तो उस ज्ञान-आनन्द का स्वाद अनुभव में आये। आत्मा से भिन्न बाह्यविषयों में कहीं आत्मा का आनन्द नहीं है।** आहाहा! **धर्मात्मा, निज आत्मा के अतिरिक्त बाहर में कहीं-स्वप्न में भी आनन्द नहीं मानता।** आहाहा!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)